इकाई 3 आरण्यक

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- वैदिक साहित्य की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- आरण्यक शब्द और अर्थ विचार का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- आरण्यकों का परिचय एवं महत्ता जान सकेंगे।
- आरण्यकों के उद्भव की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- वैदिक वाङ्मयानुसार उपलब्ध आरण्यकों की संख्या जान सकेंगे।

- वेदों के किन-किन शाखाओं से कौन-कौन से आरण्यक सम्बन्धित हैं इसका ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- आरण्यक के मूल प्रतिपाद्य विषय की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

3.1 प्रस्तावना

प्रिय विद्यार्थियों! आपने 'वैदिक साहित्य का इतिहास' नामक खण्ड की दो इकाईयों का अध्ययन कर लिया है। उन इकाईयों में आपने वैदिक संहिताओं एवं ब्राह्मण ग्रन्थों का विस्तृत अध्ययन किया। आपने यह जाना कि संहितायें चार हैं– ऋक्, यजुः, साम, अथर्व। आप यह भी जानते हैं कि प्रत्येक वेद के अपने-अपने ब्राह्मण ग्रन्थ हैं, यथा – ऋग्वेद का ऐतरेय और शांखायन ब्राह्मण। यजुर्वेद का शतपथ और तैत्तिरीय ब्राह्मण। सामवेद का पंचविंश, षड्विंश आदि ब्राह्मण। अथर्ववेद का गोपथ ब्राह्मण।

ब्राह्मण ग्रन्थों के समान प्रत्येक वेद के आरण्यक ग्रन्थ भी हैं, यथा – ऋग्वेद का ऐतरेय आरण्यक और शांखायन आरण्यक। यजुर्वेद का बृहदारण्यक, तैत्तिरीय आरण्यक, मैत्रायणी आरण्यक। सामवेद का तवलकार आरण्यक और छान्दोग्य आरण्यक। अथर्ववेद का गोपथ आरण्यक। इस इकाई में आप इन्हीं आरण्यकों के प्रतिपाद्य विषयों का अध्ययन करेंगे।

3.2 आरण्यक का परिचय

वैदिक वाङ्मय के अनुसार आरण्यक ब्राह्मण ग्रन्थों एवं उपनिषदों को जोड़ने वाली कड़ी है। संहिताओं के अन्तिम भाग ब्राह्मण ग्रन्थ हैं और इनमें यज्ञों के दार्शनिक और आध्यात्मिक पक्ष का जो अंकुरण हुआ है, उसका पल्लवित रूप आरण्क ग्रन्थ हैं। इनमें उस विषय का और विस्तृत विवेचन हुआ है। इसका ही सुविस्तृत रूप उपनिषदें हैं। वेद की जितनी शाखायें शास्त्रों में निर्दिष्ट हैं वे सभी प्राप्त नही होती हैं, परन्तु जो शाखा प्राप्य हैं उनका अवगाहन करने पर कतिपय शाखागत ही आरण्यक ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं।

3.2.1 आरण्यक शब्द एवं अर्थ का विचार

आरण्यक का अर्थ है **"अरण्ये भवम् आरण्यकम्।"** इस अर्थ में अरण्य शब्द से **तत्रभवः** (पाणिनि के अष्टाध्यायी सूत्र संख्या 4.3.53) इस सूत्र से भव अर्थ मे ठक् प्रत्यय होने पर आरण्यक शब्द निष्पन्न होता है, जिसका अर्थ अरण्य (वन, जंगल) में होने वाला तत्त्व है। अभिप्राय यह है कि अरण्य में होने वाला अध्ययन, मनन, चिन्तन, शास्त्रीय चर्चा और आध्यात्मिक-विवेचन आरण्यक शब्द से गृहीत है। आचार्य सायण के अनुसार आरण्यक का अर्थ है–

अरण्याध्ययनादेतद् आरण्यकमितीर्यते।
अरण्ये तदधीयीतेत्यैवं वाक्यं प्रवक्ष्यते।।

(तैत्तिरीयारण्यक भाष्य 6) अर्थात् अरण्य में इसका पठन-पाठन होने के कारण इसे आरण्यक कहते हैं। आरण्यकों में आत्मविद्या, तत्त्वचिन्तन और रहस्यात्मक विषयों का वर्णन है। आरण्यकों को रहस्य भी कहा जाता है– **"सर्वे वेदाः सरहस्याः सब्राह्मणाः सोपनिषत्काः"** (गोपथ ब्राह्मण 1.2.10)। निरुक्त के प्रसिद्ध टीकाकार दुर्गाचार्य ने भी आरण्यकों को "रहस्य" कहा है–**"ऐतरेयकेरहस्यब्राह्मणे"** (निरुक्त-भाष्य 1.4) आरण्यकों

में यज्ञ का गूढ रहस्य और ब्रह्मविद्या का प्रतिपादन है, अतः इन्हें "रहस्य" कहा जाता है।

3.2.2 आरण्यकों का महत्त्व

वैदिक तत्त्व मीमांसा के इतिहास में आरण्यकों का विशेष महत्त्व स्वीकार किया जाता है। महाभारत आदिपर्व मे महर्षि व्यास जी ने आरण्यक के महत्त्व का प्रतिपादन इस प्रकार किया है–

नवनीतं यथा दध्नो मलयाच्चन्दनं यथा।
आरण्यं च वेदेभ्य ओषधिभ्योऽमृतं यथा ।

(महाभारत आदिपर्व 1.331.3)

अर्थात् जैसे दही से मक्खन, मलयपर्वत से चन्दन और ओषधियों से अमृत प्राप्त होता है, वैसे ही वेदों से सार अंश रूप आरण्यक प्राप्त हुए हैं। इनमें यज्ञ के गूढ रहस्यों का उद्घाटन किया गया है। इनमें मुख्य रूप से आत्मविद्या और रहस्यात्मक विषयों के विवरण हैं। वन में रहकर स्वाध्याय और धार्मिक कार्यों में लगे रहने वाले वानप्रस्थ आश्रमवासियों के लिए इन ग्रन्थों का प्रणयन हुआ है, ऐसा प्रतीत होता है। आरण्यक ग्रन्थों में प्राणविद्या की महिमा का विशेष प्रतिपादन किया गया है। **सोऽयमाकाशः प्राणेन बृहत्या विष्टब्धः, तद्यथायमाकाशः प्राणेन बृहत्या विष्टब्धः एवं सर्वाणि भूतानि आपिपीलिकाभ्यः प्राणेन बृहत्याविष्टब्धानीत्येवं विद्यात्।** (ऐत.आ.2.1.6) अर्थात् प्राण इस विश्व का धारक है, प्राण की शक्ति से जैसे यह आकाश अपने स्थान पर स्थित है, उसी तरह सबसे बड़े प्राणों से लेकर चींटी तक समस्त जीव इस प्राण के द्वारा ही विधृत है। यदि प्राण न होता, तो इस विश्व का जो यह महान् संस्थान हमारे नेत्रों के सामने सतत आश्चर्य पैदा किया करता है, वह कहीं भी नहीं रहता। अतः प्राण सर्वत्र व्याप्त है **'सर्वे हीदं प्राणेनावृतम्'** प्राण से समस्त जगत् आवृत है। प्राणविद्या के अतिरिक्त प्रतीकोपासना, ब्रह्मविद्या, आध्यात्मिकता का वर्णन करने से आरण्यकों की विशेष महत्ता है। अनेक ऐतिहासिक और सांस्कृतिक तथ्यों की प्रस्तुति तथा वानप्रस्थियों के नियमाचरण के कारण भी आरण्यक ग्रन्थों का महत्त्व है।

3.2.3 आरण्यकों का उद्भव

वैदिक संहिताओं के पश्चात् क्रम में ब्राह्मण ग्रन्थ आते हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों के बाद आरण्यक ग्रन्थ आते हैं और उसके बाद उपनिषद्। आरण्यक, ब्राह्मण ग्रन्थों के पूरक हैं। एक ओर आरण्यक ब्राह्मणों के परिशिष्ट के रूप में हैं तो दूसरी ओर उपनिषद् आरण्यकों के अंश हैं। इस प्रकार कहा जा सकता है कि आरण्यकों का प्रारम्भिक भाग ब्राह्मण हैं और अन्तिम भाग उपनिषद् हैं। ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् इतने मिश्रित हैं कि उनके मध्य किसी प्रकार की सीमा रेखा खींचना अत्यन्त कठिन है। वेदों और ब्राह्मण ग्रन्थों में यज्ञों का विस्तृत वर्णन है। आरण्यकों के उद्भव पर एक दो तर्कपूर्ण मतों पर भी विचार करना चाहिए। कुछ पाश्चात्य मतों के अनुसार यह कह सकते हैं कि ब्राह्मण ग्रन्थों में वर्णित यज्ञविधि अत्यन्त कष्टसाध्य, दुर्बोध और नीरस होने के कारण अरुचिकर होती जा रही थी तथा इतना ही नहीं बल्कि इनके आयोजन के लिए अधिक धन की आवश्यकता होती थी। इन्हें केवल राजा और धनी व्यक्ति ही कर सकता था। अतः आत्मिक शान्ति के लिए आध्यात्म की आवश्यकता अनुभव की गई और स्थूल द्रव्यमय यज्ञ से सूक्ष्म आध्यात्म-यज्ञ की ओर प्रवृत्ति हुई। दूसरी ओर दुर्बोधता से बचने के लिए आरण्यकों की रचना की गई। इनमें यज्ञों का विधि-विधान

अत्यन्त सरल और कम साधनों के लिए है। इन्हें ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी और संन्यासी भी कर सकते हैं। दूसरे पक्ष पर यदि विचार करें तो आश्रम चतुष्टय नियमानुसार गृहस्थ ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और संन्यास इनके चार भेद हैं और वेद के भी चार भाग हैं– संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक एवं उपनिषद्। इनका क्रमशः वर्गीकरण करें तो ब्रह्मचर्याश्रम में वेदाध्ययनगत ब्राह्मण ग्रन्थ विहित कर्मकाण्डों के प्रतिपादन हेतु गृहस्थाश्रम है और वानप्रस्थाश्रमवासी के लिये आरण्यक ग्रन्थ तथा संन्यासाश्रम के लिये उपनिषद् हैं। वैदिक साहित्यानुसार यही पक्ष आरण्यकों के उद्भव और विकास पर सही प्रतीत होता है।

3.2.4 आरण्यकों के रचयिता

वैदिक ज्ञान राशि के अन्तर्गत आरण्यक ब्राह्मण ग्रन्थों का ही एक भाग है। इन ब्राह्मण ग्रन्थों के भी रचयिता भिन्न-भिन्न ऋषि हैं, अतः आरण्यकों के रचयिता ब्राह्मण के रचनाकार ही माने जाते हैं। कुछ आरण्यकों के रचनाकार इस प्रकार हैं– ऐतरेय ब्राह्मण के रचनाकार महिदास ऐतरेय हैं। वही ऐतरेय आरण्यक के भी रचनाकार हैं–**"एतद् ह स्म वै तद् विद्वान् आह महिदास ऐतरेयः।"** (ऐ.आ. 2.1.8)। ऐसा माना जाता है कि ऐतरेय आरण्यक के चतुर्थ आरण्यक के प्रवक्ता आश्वलायन और पञ्चम आरण्यक के प्रवक्ता शौनक ऋषि हैं। आचार्य सायण ने भी ऐतरेय आरण्यक के भाष्य में अपना यही मत प्रकट किया है, **"ताश्च पंचमे शौनकेन शाखान्तरमाश्रित्य पठिताः।"** (शा.आ.15) सायण ने लिखा है कि शांखायनारण्यक के प्रवक्ता 'गुण शांखायन' हैं। इनके गुरु का नाम कहोल कौषीतकि था–**"गुणाख्यात् शांखायनाद् अस्माभिरधीत्, गुणख्यः शांखायनः कहोलात् कौषीतकेः "**(शा.आ.15)। बृहदारण्यक के प्रवक्ता महर्षि याज्ञवल्क्य हैं। ये सम्पूर्ण शतपथ ब्राह्मण के भी प्रवक्ता हैं। शतपथ ब्राह्मण का अन्तिम भाग बृहदारण्यक है।

कृष्ण यजुर्वेदीय तैत्तिरीयारण्यक के प्रवक्ता कठ ऋषि हैं, **"कठेन मुनिना दृष्टंकाठकं परिकीर्त्यते"** (सायण भा.भूमिका श्लोक 10,11)। मैत्रायणी आरण्यक भी कृष्ण यजुर्वेदीय है। इसके प्रवक्ता भी कठ ऋषि ही हैं, क्योंकि मैत्रायणीयों की गणना 12 कठों के अन्तर्गत होती है। तवलकार आरण्यक जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण ही है। इसके प्रवक्ता आचार्य जैमिनि ही हैं। अतः इसी प्रकार और भी आरण्यकों के रचयिता सन्दर्भ को ग्रहण करना चाहिए।

3.2.5 आरण्यकों का प्रतिपाद्य विषय

वैदिक वाङ्मय के अनुसार तथा आरण्यक साहित्य के अवलोकन के पश्चात् आरण्यकों का प्रतिपाद्य विषय आत्मदर्शन, परमात्मदर्शन, आध्यात्मिक ज्ञान आदि ही मानना समुचित होगा। आरण्यकों में यज्ञों के आध्यात्मिक और दार्शनिक पक्षों का विवेचन किया गया है। आरण्यक ग्रन्थों में प्राणविद्या की महिमा का विशेष प्रतिपादन किया गया है। यहाँ प्राण को कालचक्र बताया गया है। दिन और रात्रि प्राण एवं अपान है। प्राण की ब्रह्मा के रूप में उपासना करनी चाहिए। मैत्रायणी आरण्यक में प्राण को अग्नि और परमात्मा बताया गया है– **"प्राणोऽग्निः परमात्मा।"** (मैत्रायणी आरण्यक 6.9) तैत्तिरीय आरण्यक में काल का विशद् वर्णन प्राप्त होता है। यज्ञोपवीत का सर्वप्रथम उल्लेख तैत्तिरीय ब्राह्मण (3.10.9-12) में प्राप्त होता है। तैत्तिरीयारण्यक (2.1.1) में यज्ञोपवीत का महत्त्व बताया गया है। यज्ञोपवीत धारण करके जो यज्ञ, पठन आदि किया जाता है, वह सब यज्ञ की श्रेणी में आता है। आजकल "श्रमण" शब्द का

अधिकांश प्रयोग बौद्ध भिक्षु करते हैं, किन्तु इसका सर्वप्रथम प्रयोग तैत्तिरीयारण्यक और बृहदारण्यकोपनिषद् (4.3.22) में प्राप्त होता है—**"वातरशना ह वा ऋषयः श्रमणा"** (तैत्तिरीय आरण्यक 2.7.1)। संन्यासियों के लिए परिव्राट या परिव्राजक शब्द का प्रयोग होता था। यह शब्द प्रव्रज्या से बना है। प्रव्रज्या का अभिप्राय है ब्रह्मज्ञान के लिए घर छोड़कर वन की ओर प्रस्थान करना। इसका प्रथम प्रयोग बृहदारण्यक में हुआ है—

एतमेव विदित्वा मुनिर्भवति। एतमेव प्रव्राजिनो लोकमिच्छन्तः प्रव्रजन्ति।। (बृ.आ. 4.4.22)

आरण्यकों में ऐतिहासिक तथ्यों का भी अत्यल्प प्रयोग हुआ है। गंगा-यमुना के मध्यवर्ती प्रदेश को आरण्यकों में अत्यन्त पवित्र बताया गया है। इसी भाग में कुरुक्षेत्र और खाण्डव वन भी है—**"नमो गंगायमुनयोर्मध्ये य वसन्ति"** (तैत्तिरीय आरण्यक 2.20)। शांखायन आरण्यक में उशीनर, कुरु-पांचाल, मत्स्य, काशी और विदेह जनपदों का वर्णन प्राप्त होता है—**"उशीनरेषु, मत्स्येषु, कुरुपांचालेषु, काशीविदेहेषु"** (शा.आ. 6. 1)। मैत्रायणी आरण्यक (1.4) में भारत के चक्रवर्ती सम्राटों के नाम भी मिलते हैं। अतः आरण्यकों में मण्डुकप्लुतिन्यायेन संहिता, ब्राह्मण निहित विषयों का प्रतिपादन है।

3.2.6 समुपलब्ध आरण्यक ग्रन्थ

सम्प्रति वैदिक साहित्य के प्रचलित लेखक आचार्य बलदेव उपाध्याय, डॉ. कपिलदेव द्विवेदी, आचार्य जगदीशचन्द्र मिश्र आदि ने उपलब्ध आरण्यकों की संख्या 6 मानी है। आचार्य भगवद्दत्त जी एवं आचार्य वाचस्पति गैरोला ने समुपलब्ध आरण्यकों की संख्या 8 मानी है। ये निम्नवत् हैं—

1) ऋग्वेद के आरण्यक —(क) ऐतरेय आरण्यक (ख) शांखायन आरण्यक
2) शुक्ल यजुर्वेद के आरण्यक —(क) बृहदारण्यक— यह माध्यन्दिन और काण्व दोनों शाखाओं में प्राप्य है।
3) कृष्ण यजुर्वेद के आरण्यक —(क) तैत्तिरीय आरण्यक (ख) मैत्रायणी आरण्यक
4) सामवेद के आरण्यक —(क) तवलकार आरण्यक (ख) छान्दोग्य आरण्यक

   (सामवेद की जैमिनि शाखा का तवलकारारण्यक है। इसको जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण भी कहते हैं। सामवेद की कौथुम शाखा का पृथक् आरण्यक नहीं है। छान्दोग्य उपनिषद् कौथुम शाखा से सम्बद्ध है। इसके ही कुछ अंशों को छान्दोग्य आरण्यक कहा जाता है।)

5) अथर्ववेद के आरण्यक —(क) गोपथ आरण्यक

वस्तुतः अथर्ववेद का कोई पृथक् आरण्यक नहीं है। गोपथ ब्राह्मण के ही ब्रह्मविद्या-परक कुछ अंशों को आरण्यक कह सकते हैं। ऐसा डॉ. कपिलदेव द्विवेदी ने वैदिक साहित्य एवं संस्कृति ग्रन्थ में उद्धृत किया है।

3.3 ऋग्वेद के आरण्यक

वैदिक साहित्यानुसार चरणव्यूह, पातञ्जल महाभाष्य, श्रीमद्भागवत आदि ग्रन्थों में निर्दिष्ट ऋग्वेद की कुल 21 शाखाओं में से वर्तमान में कतिपय शाखा तथा कतिपय ब्राह्मण ग्रन्थ ही उपलब्ध हैं, जो ब्राह्मण ग्रन्थ प्राप्य हैं उनसे सम्बन्धित आरण्यक भी प्राप्त हैं, जो इस प्रकार हैं— (1) ऐतरेय आरण्यक, यह ऋग्वेद की ऐतरेय शाखा से

सम्बन्धित है, (2) शांखायन आरण्यक, यह ऋग्वेद की शांखायन शाखा अपर नाम कौषतकीय शाखा से सम्बद्ध है।

3.3.1 ऐतरेय आरण्यक

इसका सम्बन्ध ऋग्वेद से है। यह ऐतरेय ब्राह्मण का ही परिशिष्ट है। ऐतरेय के अन्दर पाँच मुख्य अध्याय (आरण्यक) हैं, इन्हें प्रपाठक भी कहा जाता है। प्रपाठक अध्यायों में विभक्त है। इसके प्रथम तीन आरण्यक के रचयिता ऐतरेय, चतुर्थ के आश्वलायन तथा पंचम के शौनक माने जाते हैं। डॉक्टर कीथ इसे निरुक्त की अपेक्षा अर्वाचीन मानकर इसका रचनाकाल षष्ठ शताब्दी विक्रम पूर्व मानते हैं, परन्तु यह निरुक्त से प्राचीनतम है। ऐतरेय के प्रथम तीन आरण्यकों के कर्ता महिदास हैं इससे उन्हें ऐतरेय ब्राह्मण का समकालीन मानना न्यायसंगत है। इसका प्रकाशन 1876 ई. में सत्यव्रत सामश्रमी ने किया था। तदनन्तर ए. बी. कीथ ने 1909 ई. में अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित किया था। षड्गुरुशिष्य ने इस पर मोक्षप्रदा टीका लिखी थी, किन्तु वो प्रकाशित नहीं हो सकी। इस पर सायण और शंकराचार्य ने भी भाष्य लिखे हैं। इस आरण्यक के विशिष्ट प्रसंग प्राणविद्या, प्रज्ञा का महत्त्व, आत्मस्वरूप का वर्णन, वैदिक अनुष्ठान, स्त्रियों का महत्त्व, शास्त्रीय महत्त्व और आचार संहिता के बारे में विस्तार से वर्णन है। प्रत्येक आरण्यक (अध्याय) इसके निम्नवत् हैं –

प्रथम आरण्यक– इसमें महाव्रत का वर्णन है। यह महाव्रत 'गवामयन' सत्र का ही अंश है। इसमें प्रयोज्य मन्त्रों की आध्यात्मिक और प्रतीकात्मक व्याख्या की गई है।

द्वितीय आरण्यक– इसके प्रथम 3 अध्यायों में उक्थ (निष्केवल्य, प्राणविद्या और पुरुष) का विवेचन है। इसके 4 से 6 अध्यायों में ऐतरेय उपनिषद् है।

तृतीय आरण्यक– इसको 'संहितोपनिषद्' कहते हैं। इसमें संहिता, पदपाठ, क्रमपाठ तथा स्वर और व्यंजनों के आदिस्वरूप का विवेचन है। यह प्रातिशाख्यों से सम्बद्ध विषय है। इसमें शाकल्य और माण्डूकेय आदि आचार्यों के मतों का भी उल्लेख है।

चतुर्थ आरण्यक– इसमें 'महानाम्नी' ऋचाओं का संकलन है, जो महाव्रत में बोली जाती हैं।

पंचम आरण्यक– इसमें निष्केवल्य शस्त्र (मन्त्रों) का वर्णन है।

3.3.2 शांखायन आरण्यक

इसका भी सम्बन्ध ऋग्वेद से है। यह ऐतरेय आरण्यक के समान ही पन्द्रह अध्यायों तथा 137 खण्डों में विभक्त है, इसका एक अंश तीसरे अध्याय से छठें अध्याय तक कौषीतकि उपनिषद् के नाम से प्रसिद्ध है। इसके सातवें और आठवें अध्याय को संहितोपनिषद् कहते हैं। इसी को कौषीतकि आरण्यक भी कहा जाता है। 1922 ई. में श्रीधर पाठक ने सम्पूर्ण शांखायन ब्राह्मण को प्रकाशित किया है। आरण्यक के विशिष्ट प्रसंग को इस प्रकार निरूपित किया जा सकता है।

1) **प्रत्यक्ष अग्निहोत्र की अपेक्षा आध्यात्मिक अग्निहोत्र का महत्त्व** – इस आरण्यक में बताया गया है कि बाह्य अग्निहोत्र की अपेक्षा आभ्यन्तर (आध्यात्मिक) अग्निहोत्र का बहुत अधिक महत्त्व है। जो साधक आन्तरिक आत्मतत्त्व को न जानकर केवल बाहरी यज्ञ करता है, वह भस्म में हवन करता है। सारे देवता

शरीर के अन्दर प्रतिष्ठित हैं। आध्यात्मिक यज्ञ से उन सबकी तृप्ति होती है। (अध्याय 10)

2) **तत्त्वमसि और अहं ब्रह्मास्मि** – वेदान्तदर्शन के महावाक्य ये दोनों सुभाषित इस आरण्यक में है। '**तत् त्वम् असि**' वह ब्रह्म ही जीवरूप में है। '**अहं ब्रह्म अस्मि**' मैं ब्रह्मरूप हूँ, यह अनुभूति साधना की पराकाष्ठा है। **यदयम् आत्मा स एष 'तत् त्वमसि' इत्यात्माऽवगम्यः अहं ब्रह्मास्मि**'। (अध्याय 13)

3) **अहं ब्रह्मास्मि का महत्त्व** – '**अहं ब्रह्मास्मि**' महावाक्य है। यही सर्वोच्च उपदेश है। यही ऋचाओं, यजुष्, साम और अथर्वा का शिरोभाग है। जो इसको जाने बिना वेदाध्ययन करता है, वह मूर्ख है। (अध्याय 14)

4) **अर्थज्ञान का महत्त्व** – अर्थज्ञान के बिना वेदों का अध्ययन मूर्खता है। जो वेदार्थ का ज्ञानी है, उसके सारे पाप कट जाते हैं और वह मोक्ष का अधिकारी होता है।

स्थाणुरयं भारहारः किलाभूद्, अधीत्य वेदं न विजानाति योऽर्थम्।
योऽर्थज्ञ इत् सकलं भद्रमश्नुते, नाकमेति ज्ञानविधूतपाप्मा।। (अध्याय 14)

5) **आचार्यों की वंश-परम्परा** – इसमें पन्द्रह अध्याय में आचार्यों की वंशानुक्रम परम्परा इस प्रकार दी गई है– स्वयम्भू ब्रह्मा, प्रजापति, इन्द्र, विश्वामित्र, देवरात, साकमश्व, व्यश्व, विश्वमना, सुम्नयु, बृहदिवा, प्रतिवेश्य, सोम, सोमपा, सोमापि, प्रियव्रत, उद्दालक, आरुणि, कहोल, कौषीतकि और गुण शांखायन। इस गुण शांखायन से ही शांखायन आरण्यक की परम्परा आगे चली। कौषीतकि शांखायन के गुरु हैं। अतः यह आरण्यक गुरु-शिष्य दोनों का सम्मिलित प्रयास है। इसके प्रत्येक अध्यायों में विषय निम्नलिखित रूप में प्राप्त होते हैं।

क) **प्रथम अध्याय और द्वितीय अध्याय** – इसमें ऐतरेय आरण्यक के तुल्य महाव्रत का वर्णन है।

ख) **तृतीय अध्याय से षष्ठ अध्याय** – कौषीतकि उपनिषद् है। इसका विवरण उपनिषद् प्रकरण में है। कुरुक्षेत्र, उशीनर, काशी, पाञ्चाल, विदेहादि प्रदेशों का उल्लेख है।

ग) **सप्तम अध्याय और अष्टम अध्याय** – संहितोपनिषद्। इसका भी विवरण उपनिषद् प्रकरण में है।

घ) **नवम अध्याय** – इसमें प्राण की श्रेष्ठता का वर्णन है।

ङ) **दशम अध्याय** – इसमें आध्यात्मिक अग्निहोत्र का सांगोपांग वर्णन है।

च) **एकादश अध्याय** – इसमें मृत्यु के निराकरण के लिए एक विशेष याग का विधान है।

छ) **द्वादश अध्याय** – इसमें समृद्धि के लिए बिल्व (बेल) के फल से एक मणि बनाने का वर्णन है।

ज) **त्रयोदश अध्याय** – इसमें श्रवण-मनन आदि के लिए शरीर-शुद्धि, तपस्या, श्रद्धा और दम आदि की आवश्यकता का वर्णन किया गया है।

झ) **चतुर्दश अध्याय** – इसमें '**अहं ब्रह्मास्मि**' और वेदों के अर्थज्ञान का महत्त्व बताया गया है।

ञ) **पञ्चदश अध्याय**– इसमें आचार्यों का वंशानुक्रम दिया गया है।

3.4 यजुर्वेद के आरण्यक

वैदिक साहित्य में 100 व 101 यजुर्वेद की शाखा बतायी गयी है जिसमें यजुर्वेद के दो सम्प्रदाय अथवा भेद के कारण कृष्ण यजुर्वेद के 86 तथा शुक्ल यजुर्वेद के 15 शाखाओं सहित कुल 101 का उल्लेख है परन्तु दोनों सम्प्रदायों के कतिपय शाखागत ब्राह्मण ग्रन्थ मिलने के कारण कुछ ही आरण्यकों का विवरण मिलता है जो निम्नवत् हैं–

3.4.1 शुक्ल यजुर्वेदीय माध्यन्दिन और काण्व दोनों शाखाओं का आरण्यक

शुक्ल यजुर्वेद के 15 शाखाओं में से केवल शतपथ ब्राह्मण ग्रन्थ ही माध्यन्दिन एवं काण्व दोनों का प्रतिनिधित्व करता है केवल कुछ अध्यायों का अन्तर है, किन्तु इन दोनों का आरण्यक एक है– बृहदारण्यक।

क) **बृहदारण्यक** – वस्तुतः वैदिक साहित्यानुसार यह शतपथ ब्राह्मण के अन्तिम 14वें काण्ड के अन्त में दिया गया है। इसका प्रथम प्रकाशन 1889 ई. में आटो वोहट्लिङ्क ने किया था। इसको आरण्यक की अपेक्षा उपनिषद् के रूप में अधिक मान्यता प्राप्त है। इसमें आत्मतत्त्व की विशद् विवेचना है।

3.4.2 कृष्ण यजुर्वेदीय आरण्यक

ब्रह्म सम्प्रदाय कृष्ण यजुर्वेद के 86 शाखाओं में से कुछ ही शाखाओं पर आरण्यक उपलब्ध हैं, यथा– (क) तैत्तिरीय आरण्यक, (ख) मैत्रायणी आरण्यक।

क) **तैत्तिरीय आरण्यक** – यह कृष्ण यजुर्वेदीय तैत्तिरीय शाखा का आरण्यक है। इसमें 10 प्रपाठक (अरण) या परिच्छेद हैं। प्रपाठकों के उपविभाग अनुवाक हैं। प्रपाठकों का नामकरण उनके प्रथम पद के आधार पर किया गया है। 10 प्रपाठकों के नाम इस प्रकार हैं– 1. भाद्र, 2. सह वै, 3. चिति, 4. युञ्ज ते, 5. देव वै, 6. परे, 7. शिक्षा, 8. ब्रह्मविद्या, 9. भृगु, 10. नारायणीय। प्रथम प्रपाठक **'भद्रं कर्णेभिः'** मन्त्र से प्रारम्भ हुआ है, अतः इस प्रपाठक का नाम 'भद्र' है। इसी प्रकार अन्य प्रपाठकों के नाम हैं। इस आरण्यक के कुछ विशिष्ट सन्दर्भों का अवलोकन किया जा सकता है, यथा–

1) **दो उपनिषदें** – प्रपाठक 7 से 9 तैत्तिरीय उपनिषद् है और प्रपाठक 10 'महानारायणीय उपनिषद्' है। इस प्रकार दो उपनिषदों का इसमें अन्तर्भाव है। इस दृष्टि से तैत्तिरीय आरण्यक केवल 6 प्रपाठक तक ही है।

2) **पंच महायज्ञ** – इसमें पाँच महायज्ञों के दैनिक अनुष्ठान का निर्देश है। पाँच महायज्ञ हैं– 1. ब्रह्मयज्ञ (सन्ध्या), 2. देवयज्ञ (अग्निहोत्र), 3. पितृयज्ञ (मातृ-पितृ सेवा, इसे श्राद्ध-तर्पण भी कहते हैं)। 4. मनुष्ययज्ञ (अतिथि-सत्कार), 5. भूतयज्ञ (बलिवैश्वदेव यज्ञ, पशु-पक्षियों आदि को अन्नादि देना)। इन्हें प्रतिदिन करने का निर्देश है–'**पंच वा एते महायज्ञाः सतति प्रतायन्ते**'।

3) **स्वाध्याय** – वेदमन्त्रों के अध्ययन को स्वाध्याय कहते हैं। यदि एक मन्त्र का भी नियम से अध्ययन किया जाता है तो स्वाध्याय पूर्ण माना जाता है।

4) **अभिचार-प्रयोग** – प्रपाठक 4 (4.27 और 4.37) में शत्रुनाश के लिए अभिचार-प्रयोगों का उल्लेख है, जैसे– भिन्धि, छिन्धि, जहि, फट् आदि। ये अभिचार मन्त्र हैं।

5) **भौगोलिक वर्णन** – प्रपाठक 4 में कुरुक्षेत्र और खाण्डव वन का वर्णन है।

6) **निर्वचन** – कुछ शब्दों के निर्वचन भी मिलते हैं, जैसे– कश्यप का अर्थ सूर्य है। **'सर्वंपश्यति इति पश्यकः'** यह सबको देखता है। वर्ण व्यत्यय से पश्यक का कश्यप हो गया। इसमें वर्णों का स्थान-परिवर्तन हुआ है। **'पश्यकः कश्यपो भवति'**। (1.8.8)

7) **व्यास मुनि** – व्यास मुनि का पाराशर्य (पराशर के पुत्र) नाम से उल्लेख मिलता है। (1.9 .2)। सूर्य नमस्कार का भी उल्लेख है। (2.2)

प्रपाठकों के अनुसार वर्ण्य प्रतिपाद्य विषय इस प्रकार हैं–

- **प्रथम प्रपाठक** – इसमें आरुण-केतुक नामक अग्नि की उपासना और तदर्थ इष्टका-चयन का वर्णन है।
- **द्वितीय प्रपाठक** – इसमें स्वाध्याय और पंच महायज्ञों का वर्णन है।
- **तृतीय प्रपाठक** – इसमें चातुर्होत्र चिति से सम्बद्ध मन्त्र हैं।
- **चतुर्थ प्रपाठक** – इसमें प्रवर्य होम से सम्बद्ध मन्त्र हैं।
- **पंचम प्रपाठक** – इसमें यज्ञ सम्बन्धी कतिपय संकेत दिए गए हैं।
- **षष्ठ प्रपाठक** – इसमें पितृमेध सम्बन्धी मन्त्रों का संकलन है। इसमें ऋग्वेद के भी मन्त्र दिए गए हैं।
- **सप्तम से नवम प्रपाठक पर्यन्त** – यह 'तैत्तिरीय उपनिषद्' है।
- **दशम प्रपाठक** – यह 'महानारायणीय उपनिषद्' है। इसको खिल काण्ड मानते हैं।

ख) **मैत्रायणी आरण्यक** – यह कृष्ण यजुर्वेदीय मैत्रायणी शाखा का आरण्यक है। इसको मैत्रायणीय उपनिषद् भी कहते हैं। यह मैत्रायणी संहिता के परिशिष्ट के रूप में अन्त में उपलब्ध है। इसमें 7 प्रपाठक हैं। प्रपाठक खण्डों में विभक्त हैं। इस आरण्यक के विशिष्ट प्रतिपाद्य प्रसंग निम्न हैं –

1. **ओम् का महत्त्व** – ओम् ही प्रणव और उद्गीथ है। वही ब्रह्म है। ओम् के द्वारा ब्रह्म की उपासना करें।

   य उद्गीथः, स प्रणवः, एतद् ब्रह्म। तस्माद् 'ओम्' इत्यनेन एतद् उपासीत। (6.4)

2. **ब्रह्म के अनेक रूप** – ब्रह्म ही ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, प्रजापति, अग्नि, वरुण, वायु, इन्द्र और चन्द्रमा है।

   त्वं ब्रह्मा त्वं च वै विष्णुः, त्वं रुद्रस्त्वं प्रजापतिः।
   त्वमग्निर्वरुणो वायुः, त्वमिन्द्रस्त्वं निशाकरः।। (5.1)

3. **चारों वेद ब्रह्म के निश्वास** – ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद (अथर्वाङ्गिरस वेद) को ब्रह्म का निश्वास बताया गया है।

एतस्य महतो भूतस्य निश्वसितम् एतद् यद् ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरसः। (मैत्रा०आ० 6.32)

4. **चक्रवर्ती राजाओं के नाम** – भारत के चक्रवर्ती 15 महाराजाओं के नाम दिए गए हैं। इनका विवरण पहले दिया जा चुका है। (मैत्रा० 1.4)

5. **मन का महत्त्व** – मन ही सारी बौद्धिक क्रियाओं का संचालक है। देखना, सुनना आदि मन के कारण ही होता है। अतएव काम, संकल्प, विचिकित्सा (सन्देह), श्रद्धा-अश्रद्धा, धैर्य-अधैर्य, धी (बुद्धि, ज्ञान), ह्री (लज्जा), भी (भय) ये सब मन के ही स्वरूप हैं। (मैत्रा० 6.30)

6. **ज्ञान के विघ्न** – इसमें ज्ञान के विघ्नों (ज्ञानोपसर्ग) की एक लम्बी सूची दी गई है। इनमें से कुछ विघ्न ये हैं– मोह का प्रपंच, मनोरंजन-प्रियता, प्रवास, भिक्षावृत्ति शिल्पों में विशेष अभिरुचि, पाखण्डों में रुचि, चाटुकारिता, अभिनय में रुचि, कुतर्क के प्रवृत्ति, इन्द्रजाल (जादू दिखाना) आदि में रुचि। (मैत्रा० 7.8)

7. **जीवात्मा अंगुष्ठमात्र** – जीवात्मा अणु से भी अणु है। वह अंगुष्ठमात्र है **'अंगुष्ठमात्रम् अणोरपि अणुम्'** (मैत्रा० 6.38)

8. **चित्तशुद्धि से मोक्ष** – चित्त या मन ही बन्धन का कारण है। चित्तशुद्धि ही मोक्ष का सर्वोत्तम उपाय है। (मैत्रा० 6.34)

इसी प्रकार इसके सातों प्रपाठकों का वर्ण्य-विषय निम्नलिखित हैं–

- **प्रथम प्रपाठक** – ब्रह्मयज्ञ। राजा बृहद्रथ को वैराग्य और मुनि शाकायन्य द्वारा उसे उपदेश।
- **द्वितीय प्रपाठक** – शाकायन्य द्वारा ब्रह्मविद्या का उपदेश।
- **तृतीय प्रपाठक** – जीवात्मा के स्वरूप का वर्णन। कर्मफल और पुनर्जन्म।
- **चतुर्थ प्रपाठक** – ब्रह्म-सायुज्य-प्राप्ति के उपाय।
- **पंचम प्रपाठक** – कौत्सायनी स्तुति। ब्रह्म की नानारूपों में स्थिति।
- **षष्ठ प्रपाठक** – ओम्, प्रणव, उद्गीथ और गायत्री की उपासना। आत्मयज्ञ का वर्णन। षड्ंग योग, शब्दब्रह्म, निर्विषय मन से मोक्ष प्राप्ति।
- **सप्तम प्रपाठक** – आत्म-स्वरूप-वर्णन आदि समुल्लेखित हैं।

3.5 सामवेद के आरण्यक

वैदिक साहित्य में सामवेद की 1000 शाखायें बतायी गयी है, किन्तु कालक्रमवशात् आज कुछ ही शाखायें उपलब्ध हैं। वर्तमान में अतीतगत दृष्टि से और इन ब्रह्मण ग्रन्थ के अनुसार (क) तवलकार आरण्यक (ख) छान्दोग्य आरण्यक, उपलब्ध हैं।

3.5.1 तवलकार आरण्यक

यह सामवेद की जैमिनि शाखा का आरण्यक है। इसको जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण भी कहते हैं। इसका प्रथम प्रकाशन 1931 में एच्. अर्टल ने किया था। इसमें चार अध्याय हैं और प्रत्येक अध्याय में कई अनुवाक और खण्ड हैं। चतुर्थ अध्याय के दशम अनुवाक

में प्रख्यात तवलकार या केन उपनिषद् है। ब्राह्मण ग्रन्थों के वर्णन में इसका उल्लेख किया गया है। तवलकार आरण्यक के प्रधान विशिष्ट प्रतिपाद्य विषय निम्न रूप में रेखांकित कर सकते हैं।

1. **ओम् और गायत्री का महत्त्व** – ओम् परम ज्ञान और बुद्धि का कारण है। ओम् से ही गायत्री की उत्पत्ति हुई है। गायत्री से ही प्रजापति और देवों ने अमरता प्राप्त की। **तद् एतदमृतं गायत्रम्। एतेन वै प्रजापतिरमृतत्वम् अगच्छत्। एतेन देवाः। एतेन ऋषयः।** (जैमि.उप.ब्रा. 3.7.3), **ब्रह्म उ गायत्री** (जैमि.उप.ब्रा. 1.1.8) गायत्री के रूप में यह पवित्र ज्ञान सर्वप्रथम कश्यप ऋषि को प्राप्त हुआ। गायत्री की उपासना करनी चाहिए।
2. **वेदों से सृष्टि-प्रक्रिया** – इसमें वर्णन है कि सृष्टि-प्रक्रिया का प्रारम्भ वेदों से हुआ।
3. **अतिमानवीय शक्ति प्राप्त करना** – इसमें अतिमानवीय शक्तियों की प्राप्ति के लिए कतिपय साधनाओं का उल्लेख है, जैसे– अर्धरात्रि में श्मशान-साधना आदि।
4. **प्राचीन धार्मिक मान्यताएँ** – इसमें कतिपय प्राचीन धार्मिक मान्यताओं का उल्लेख है, जो अन्य ब्राह्मणों में अप्राप्य है, जैसे – प्रेतात्माओं द्वारा साधकों का मार्ग निर्देशन, मृत व्यक्तियों का पुनः प्रकट होना आदि।
5. **सामगान के तत्त्वों की व्याख्या** – इसमें सामगान के तत्त्वों की आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक दृष्टि से व्याख्या की गई है।
6. **प्राचीन भाषा और शब्दावली** – इसमें प्राचीन भाषा, प्राचीन व्याकरण सम्बन्धी रूप और प्राचीन शब्दावली प्राप्य है।
7. **देवशास्त्रीय एवं ऐतिहासिक तथ्य** – इसमें देवशास्त्र से सम्बद्ध अनेक आख्यान दिए गए हैं। अनेक ऐतिहासिक तथ्य भी इसमें सन्निहित हैं।

3.5.2 छान्दोग्य आरण्यक

यह सामवेद के ताण्ड्य ब्राह्मण से सम्बद्ध आरण्यक है। सत्यव्रत सामश्रमी ने 1878 ई. में सामवेद आरण्यक संहिता नाम से इसको प्रकाशित किया था। छान्दोग्योपनिषद् का प्रथम भाग छान्दोग्यारण्यक है इसमें सामन् और उद्गीथ की धार्मिक दृष्टि से व्याख्या की गई है। छान्दोग्योपनिषद् के अध्याय और प्रतिपाद्य विषयों को छान्दोग्य आरण्यक का प्रतिपाद्य समझ लेना चाहिए।

3.6 अथर्ववेद के आरण्यक

वैदिक साहित्य में अथर्ववेद की 9 शाखाओं का उल्लेख मिलता है। सम्प्रति वर्तमान साहित्य में मात्र दो संहिता शाखाओं का प्रचलन स्वीकार किया गया है, किन्तु केवल एक ब्राह्मण ग्रन्थ गोपथ ब्राह्मण, का ही नाम उल्लेख है, वस्तुतः अथर्ववेद का कोई पृथक् आरण्यक नहीं है। गोपथ ब्राह्मण के ही ब्रह्मविद्यापरक कुछ अंशों को आरण्यक कह सकते हैं। ऐसा डॉ. कपिलदेव द्विवेदी ने वैदिक साहित्य एवं संस्कृति ग्रन्थ में उद्धृत किया है।

3.6.1 गोपथ आरण्यक

गोपथ ब्राह्मण के पूर्व के 1 से 5 प्रपाठक के कतिपय अंश तथा उत्तर के 1 से 6 प्रपाठक के कुछ अंश को पढ़ने पर आरण्यकवत् विषय की प्रतीति होती है तथा ब्राह्मण ग्रन्थ और आरण्यक ग्रन्थ की अत्यन्त सन्निकटता से भी प्रतीति की परिपुष्टि दृष्टिगोचर होती है। हो सकता है इसी आधार को मानकर डॉ. कपिलदेव द्विवेदी ने गोपथ ब्राह्मण के कुछ अंश पर विचार करते हुए गोपथ आरण्यक की चर्चा की है। अन्य अतीतविदों के अनुसार वस्तुतः अथर्ववेद का कोई पृथक् आरण्यक नहीं है।

3.7 सारांश

आरण्यक ब्राह्मण ग्रन्थ एवं उपनिषद् को जोड़ने वाली कड़ी है। संहिताओं का अन्तिम भाग ब्राह्मण ग्रन्थ हैं और इनमें यज्ञों के दार्शनिक और आध्यात्मिक पक्ष का जो अंकुरण हुआ है, उसका पल्लवित रूप आरण्क ग्रन्थ हैं। अरण्य में इसका पठन-पाठन होने के कारण इसे आरण्यक कहते हैं। आरण्यकों में आत्मविद्या, तत्त्वचिन्तन और रहस्यात्मक विषयों का वर्णन है। प्राणविद्या के अतिरिक्त प्रतीकोपासना, ब्रह्मविद्या, आध्यात्मिकता का वर्णन करने से आरण्यकों की विशेष महत्ता है। वैदिक संहिताओं के पश्चात् क्रम में ब्राह्मण ग्रन्थ आते हैं। ब्राह्मणों के बाद आरण्यक आते हैं और उसके बाद उपनिषद्। आरण्यक, ब्राह्मण ग्रन्थों के पूरक हैं। एक ओर आरण्यक ब्राह्मणों के परिशिष्ट के रूप में हैं तो दूसरी ओर उपनिषद् आरण्यकों के अंश हैं। इस प्रकार कहा जा सकता है कि आरण्यकों का प्रारम्भिक भाग ब्राह्मण हैं और अन्तिम भाग उपनिषद् है। ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् इतने मिश्रित हैं कि उनके मध्य किसी प्रकार की सीमा रेखा खींचना अत्यन्त कठिन है। वेदों और इन ब्राह्मण ग्रन्थों के रचयिता भिन्न-भिन्न ऋषि रहे हैं, अतः आरण्यकों के रचयिता ब्राह्मण के रचनाकार ही माने जाते हैं। आरण्यकों का प्रतिपाद्य विषय आत्मदर्शन, परमात्मदर्शन, आध्यात्मिक ज्ञान आदि हैं। आरण्यकों में यज्ञों का आध्यात्मिक और दार्शनिक पक्षों का विवेचन किया गया है। आरण्यक ग्रन्थों में प्राणविद्या की महिमा का विशेष प्रतिपादन किया गया है। यहाँ प्राण को कालचक्र बताया गया है। दिन और रात्रि को प्राण एवं अपान बताया गया है। उपलब्ध आरण्यकों की संख्या 6 है। आचार्य भगवद्दत्त जी एवं आचार्य वाचस्पति गैरोला ने समुपलब्ध आरण्यको की संख्या 8 मानी है ये निम्नवत् हैं– ऋग्वेद के आरण्यक– (क) ऐतरेय आरण्यक, (ख) शांखायन आरण्यक। शुक्ल यजुर्वेद के आरण्यक– (क) बृहदारण्यक यह माध्यन्दिन और काण्व दोनों शाखाओं में प्राप्य है। कृष्ण यजुर्वेद के आरण्यक– (क) तैत्तिरीय आरण्यक, (ख) मैत्रायणी आरण्यक। सामवेद के आरण्यक– (क) तवलकार आरण्यक, (ख) छान्दोग्य आरण्यक, सामवेद की जैमिनि शाखा का तवलकार आरण्यक है। इसको जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण भी कहते हैं। सामवेद की कौथुम शाखा का पृथक् आरण्यक नहीं है।

3.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. वैदिक साहित्य और संस्कृति – पद्मभूषण आचार्य बलदेव उपाध्याय, शारदा संस्थान रवीन्द्रपुरी दुर्गाकुण्ड वाराणसी 1973 ई. प्रथम संस्करण।
2. वैदिक साहित्य और संस्कृति – आचार्य वाचस्पति गैरोला, संवर्तिका प्रकाशन प्रयागराज (इलाहाबाद) 1969 ई. प्रथम संस्करण।

3. वैदिक साहित्य एवं संस्कृति – आचार्य कपिलदेव द्विवेदी, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी 2000 ई.।
4. वैदिक वाङ्मय का इतिहास भाग द्वितीय – आचार्य भगवद्दत्त ,अनुसंधान विभाग डी.ए.वी कालेज लाहौर 1927 ई. प्रथम संस्करण।
5. वैदिक साहित्य – पं. रामगोविन्द त्रिवेदी, भारतीय ज्ञानपीठ काशी 1950 ई. प्रथम संस्करण।
6. वैदिकवाङ्मयस्येतिहासः – आचार्य जगदीशचन्द्र मिश्र, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन 1988 ई. प्रथम संस्करण।
7. भारतीय दर्शन का इतिहास भाग 1, डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन्, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी जयपुर, प्रकाशन 1978 ई. प्रथम संस्करण।
8. वैदिक साहित्य का इतिहास – प्रो. पारसनाथ द्विवेदी, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी, प्रकाशन 2009 ई. प्रथम संस्करण।
9. वैदिक साहित्य – प्रो.किरीट जोशी, सान्दीपनि विद्या प्रतिष्ठान, उज्जैन।

3.9 अभ्यास प्रश्न

1. आरण्यकों के रचना काल पर प्रकाश डालिए।
2 .ऐतरेय आरण्यक पर अपने विचार स्पष्ट कीजिए।
3. आरण्यकों का महत्त्व पर प्रकाश डालिए।
4. आरण्यकों का संक्षिप्त परिचय सहित प्रतिपाद्य विषय पर टिप्पणी लिखिए।